1961F Pandit Ambadas Ji

Svargiya Amba Das Ji Shastri (In Sanmati Sandesh, 1961)

स्व० पं० अम्बादासजी शास्त्री

श्री पं० हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री

'आप प्रौढ़ विद्वान् होने के साथ कितने सहृदय व्यक्ति थे, यह इस संस्मरण में पढ़िये।'

पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी के गुरु होने के नाते जैनसमाज स्व० पं० अम्बादास जी से भली भाँति परिचित हैं। पूज्य वर्णी जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि आज से ६० वर्ष पूर्व बनारस के ब्राह्मण विद्वानों में इतना अधिक साम्प्रदायिक विद्वेष था कि कोई भी अजैन विद्वान जैन छात्रों को पढ़ाने के लिए तैयार न था। उस समय एक जैन छात्र (स्वयं वर्णी जी) को न्याय पढ़ाने का उपक्रम करके पूज्य पं० अम्बादास जी शास्त्री ने अपने सम्प्रदायातीत महान् साहस का परिचय दिया था। बनारस में स्याद्वाद महाविद्यालय की स्थापना के पश्चात् आप अपने जीवन के अन्तिम समय तक न्यायाध्यापक की गद्दी पर आसीन थे। अपने ध्यापनकाल में अनेकों बार आपको ब्राह्मण विद्वानों का कोप-भाजन बनना पड़ा। परन्तु आप अन्त तक जैन छात्रों को प्रेम से जैन न्याय के ग्रन्थों को पढ़ाते रहे।

सन् १९२४ की १४ जुलाई को यद्यपि मैं न्यायतीर्थ और शास्त्री परीक्षा पास करने के पश्चात् आचार्य परीक्षा के विशेष अध्ययन के लिए बनारस गया था, किन्तु वहाँ पर विद्यालय में धर्माध्यापक का स्थान रिक्त होने के कारण तात्कालिक अधिष्ठाता ब्र. शीतलप्रसाद जी और मन्त्री बा० सुमतिप्रसाद जी के पत्र एवं तार-द्वारा आग्रह से धर्माध्यापन का कार्य स्वीकार कर लिया और १७ जुलाई को ही धर्माध्यापक की गद्दी पर आसीन होकर धर्मशास्त्र का अध्यापन कराने लगा।

मेरा इस प्रकार अचानक धर्माध्यापक होकर पढ़ाना मेरे कुछ बालसाथी और सम्बन्धी छात्रों को अच्छा नहीं लगा और वे मुझे अपदस्थ करने के लिए नाना प्रकार के अवैध उपायों का आश्रय लेने लगे। जब उनसे उन्हें अपने उद्देश्य की सिद्धि प्राप्त नहीं हुई, तो अधिष्ठाता और मन्त्री को नाना प्रकार की बातें लिख-लिख कर भेजने लगे, जिनका कि आशय यह था—'ये बिलकुल नये हैं, अल्पवयस्क हैं, हमारे साथी हैं, हमसे भी छोटे हैं, इसके पूर्व इन्होंने किसी छोटी सी भी पाठशाला में नहीं पढ़ाया है।' आदि।

चूँकि मन्त्री बनारस से बहुत दूर सहारनपुर रहते थे और मेरी पठन-पाठन की योग्यता का निर्णय करना उनके वश की बात नहीं थी, अतएव उन्होंने अधिष्ठाता ब्र० शीतलप्रसाद जी को लिखा कि आप पं० जी की मेरी योग्यता की जाँच करके शिकायत करने वाले छात्रों का समाधान करें। ब्रह्मचारी जी का चौमासा उस वर्ष इटावा में था और चौमासा पूर्ण होने के पूर्व उनका वहाँ से बनारस आना संभव नहीं था, इसलिए उन्होंने श्री० पं० अम्बादास जी शास्त्री के नाम एक पत्र लिख कर मेरी योग्यता की जांच करने की प्रेरणा की।

यहाँ इतना बतलाना आवश्यक है कि बनारस जाने के पूर्व मेरा शास्त्री जी से कोई भी परिचय नहीं था, और इस समय जाने के प्रथम दिन के बाद भी उनके पास बैठने या बातचीत करने का भी कभी कोई अवसर नहीं आया था। हाँ, 'गुरुणां गुरू' होने के नाते उनके प्रति मनमें अत्यन्त श्रद्धा के भाव अवश्य थे। जिन्होंने बनारस विद्यालय के प्राचीत (गंगा-निमग्न होने के पूर्ववर्ती) हॉल को देखा है, वे जानते है कि उसके मध्यवर्ती पांडुकशिला के दक्षिण भाग में शास्त्री जी पढ़ाने को बैठते थे और उत्तर भाग में मैं पढ़ाने को बैठा करता था। इसलिए एक के पढ़ाने के ढंग को दूसरा सहज में ही सुन सकता था। शास्त्री जी उस समय बहुत वृद्ध हो गए थे, अतः विद्यालय आरम्भ होने के कुछ समय बाद आते थे और आने के पश्चात् थकान दूर करने के लिए गद्दी पर कुछ समय तक आँख बन्द कर विश्राम किया करते थे। इस विश्राम का लाभ उन्हें मेरे पढ़ाने का ढंग अनायास ही सुनने को मिल जाता था। अतः जब अधिष्ठाता ब्र० शीतलप्रसाद जी का उक्त पत्र उन्हें मिला। तो वे पढ़कर आग बबूला हो गये और तुरन्त आफिस में जाकर तात्कालिक सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री० बा० पन्नालाल जी चौधरी से बोले—

—अधिष्ठाता को लिख दो, जो व्यक्ति मेरी बराबरी

पर बैठकर निर्भयता पूर्वक अनेक उच्च ग्रंथों के पाठ लगातार ४-४ घन्टे तक महीनों से पढ़ाता आ रहा है, उसकी परीक्षा करने के लिए लिखना उसका नहीं, प्रत्युत मेरा अपमान करना है, मैं ऐसा कदापि नहीं कर सकता, आदि। श्री चौधरीजी ने उनके इस उत्तर की सूचना अधिष्ठाता जी को दे दी।

मुझे जब इस गुप्त रहस्य का पता चला, तो मैं आश्चर्य चकित होकर रह गया। कि इस 'गुरुणांगुरु' का मुझ अल्पवयस्क व्यक्ति के प्रति ऐसा उच्च विचार ?

'मझले भैया, संस्मरण के अन्त में मैं बतला चुका हूँ कि १७ नवम्बर सन् १९२४ को रात्रि को उनकी सख्त बीमारी का तार मिलते ही मैं अचानक देश चला आया। और उनकी मृत्यु हो जाने के कारण मैं पुनः वापिस बनारस न जा सका! इस परिस्थिति से लाभ उठाकर मेरे गाँव की पाठशाला में पढ़ाने वाले मेरे ही एक साथी तत्काल बनारस जा पहुँचे और विद्रोही छात्रों के परामर्श से मेरे स्थान पर अल्प वेतन पर कार्य करने को प्रत्याशी हुए। उनसे जब शास्त्री ने मेरे भाई की कुशलक्षेम पूछी और उनसे उनकी मृत्यु की बात ज्ञात हुई तो उन्होंने उनके इस जघन्यकृत्य के लिए उन्हें बहुत फटकारा।

इस घटना के दो मास बाद जब मैं अपना सामान उठाने के लिए बनारस गया, तो उक्त सर्व बातें पूज्य श्री शास्त्री जी ने स्वयं ही अपने मुख से मुझे सुनाईं और अनेक प्रकार से समवेदना प्रकट करते हुए सान्त्वना दी। यह सब सुनकर मैं उनकी इस अकारण-वत्सलता से द्रवीभूत हो गया और सहज ही मेरे अश्रुबिन्दु उनके चरणों पर गिर पड़े। आज भी उनकी याद आने पर उनके प्रति मस्तक श्रद्धा से अवनत हो जाता है।